Y.A.Government Degree College For Women, Chirala, Bapatla District.

DEPARTMENT OF HINDI

STUDY PROJECT
ON
SAMAJ SUDHARAK KABIRDAS

Submitted by :

1. *VASUPALLI TULASI* *BSC MSCS*
2. *BAKKA SHARMILA* *BSC MSCS*

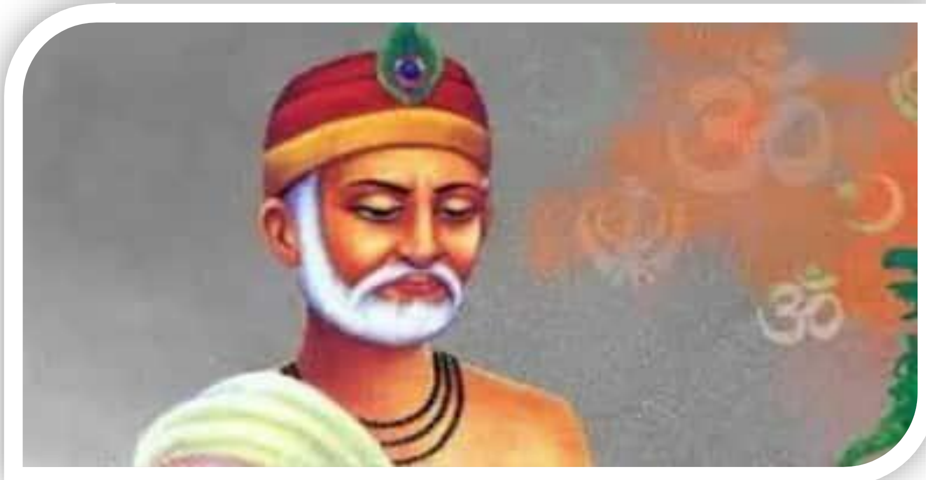

कबीर एक समाज सुधारक | kabir ek samaj sudharak

- कबीर एक समाज सुधारक
- कबीर का युग
- कबीर का सुधारक व्यक्तित्व

कबीर के उद्भव-काल की सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक और साहित्यिक परिस्थितियों का अवलोकन इस दृष्टि से उपयोगी सिद्ध होगा, क्योंकि इन परिस्थितियों का कबीर के कवि व्यक्तित्व के निर्माण में पर्याप्त हाथ रहा है। स्वर्गीय 'दिनकर' की यह टिप्पणी उचित ही है कि 'हर कवि अपने युग का ही कवि होता है और साथ ही यह भी कि हर युग अपने कवि की प्रतीक्षा किया करता है। इसीलिए साहित्य मूल रूप से शाश्वत और कालजयी अवश्य हो, किन्तु समग्रतः वह काल-सापेक्ष और देश-सापेक्ष ही रहता है।'

कबीर के समय में न केवल मुसलमानों का राज्य हमारे देश में स्थापित हो गया था, अपितु उनका इस्लाम धर्म भी जड़ें जमाने लगा था। बाद में मुसलमानों का मूल उद्देश्य राजनीतिक न होकर धार्मिक हो गया था। बढ़ते हुए इस्लाम के प्रभाव से हिन्दू धर्म का अधःपतन होने लगा था, फलतः हिन्दुओं और मुसलमानों में परस्पर वैमनस्य और घृणा की खाई गहरी होने लगी थी। मुसलमानों के बढ़ते हुए प्रभाव और अधिकार का सबसे मुख्य कारण उनकी परस्पर कटुता और आपसी ईर्ष्या-द्वेष की भावना थी। आपसी संघर्ष से वे अपने पराक्रम और साहस को खो चुके थे। राजनीतिक गतिविधियों के समान धर्म का स्वरूप भी दूषित हो रहा था। हिन्दू धर्म में अनेक मत और

सम्प्रदाय अंकुरित होने लगे थे। वामाचार, सिद्ध, नाथ आदि सम्प्रदायों की अदैविक साधनाओं का पूरा जोर हो रहा था। इससे भारतीय जीवन गुमराह और कलुषित हो रहा था। वैदिक प्रवृत्ति का सबसे अधिक प्रभाव बढ़ गया था, जिसके परिणामस्वरूप पारिवारिक जीवन भी इससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका। जहाँ एक ओर अघोरी, वैरागी, अवधूत, फक्कड़ आदि संन्यास और वैराग्य पथ पर चलने के लिए भोली-भाली जनता को अपने चमत्कारों और प्रदर्शनों से आकर्षित कर रहे थे, वहीं दूसरी ओर सूफी सन्त अपनी प्रेम-साधना के उपदेश से जनमानस को प्रभावित करते जा रहे थे। इस प्रकार से धर्म की सच्चाई, आडम्बरों, चमत्कारों और प्रदर्शनों से ढकती जा रही थी।

कबीर युगीन सामाजिक जीवन बहुत ही चिन्ताजनक था। वह अत्यन्त अव्यवस्थित और विशृंखलित हो गया था। न केवल मुसलमानों ने अपने इस्लाम धर्म को हिन्दुओं पर थोप-थोप कर उन्हें विवश कर दिया था, अपितु सवर्ण हिन्दू समाज भी शूद्रों और अछूत जातियों को अपने हीन दृष्टिकोण से नीचा दिखा रहे थे। तत्कालीन सामाजिक अव्यवस्था पर प्रकाश डालते हुए डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत ने लिखा है "कबीर के समय में समाज की दशा बड़ी शोचनीय थी। हिन्दू और मुसलमान इन दोनों समाजों की धार्मिक एवं व्यावहारिक सभी बातों में आडम्बर बढ़ता जा रहा था। दोनों ही असत्य एवं मिथ्यात्व के पुजारी होते जा रहे थे। सभी क्षेत्रों में काली लकीरें दिखाई देने लगी थीं। इसी के फलस्वरूप जाति तथा देश में सर्वत्र अस्त व्यस्तता और विशृंखलता फैली हुई थी।"

सच्चे इस प्रकार से कबीर का युग हर प्रकार अस्वस्थ और दिशाहीन हो गया। इसे एक युगदृष्टा और युग प्रवर्तक की अपेक्षा थी।

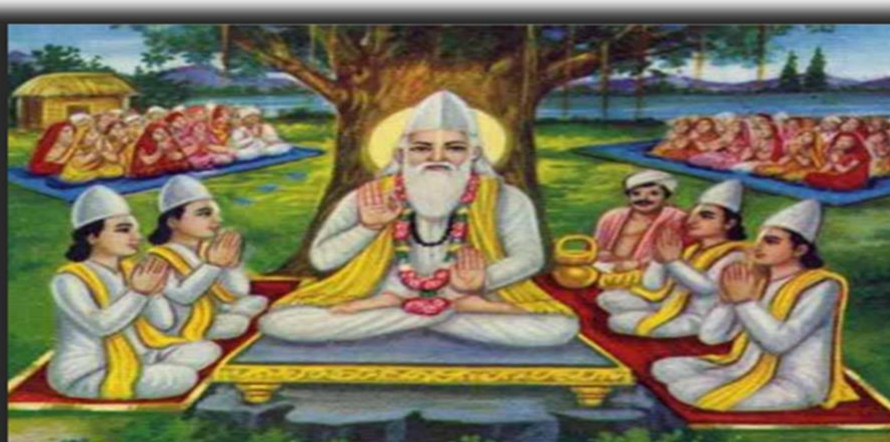

कबीर का सुधारक व्यक्तित्व

कबीर केवल सन्त कवि ही नहीं थे, अपितु वे महान युगदृष्टा और सच्चे मार्गदर्शक भी थे। कबीर के सुधारवादी दृष्टिकोण पर प्रकाश डालते हुए सुप्रसिद्ध इतिहासकार विकले ने लिखा है-

"जनता की धर्मान्धता तथा शासकों की नीति के कारण कबीर के जन्मकाल के समय हिन्दू-मुसलमानों का विरोध बहुत बढ़ गया था। धर्म के सच्चे रहस्य को भूलकर कृत्रिम विभेदों द्वारा उत्तेजित होकर दोनों जातियाँ धर्म के नाम पर अधर्म कर रही थीं। ऐसी स्थिति में सच्चे मार्गदर्शन का श्रेय कबीर को है। यद्यपि कबीर ऊपरी धार्मिक सुधार तक ही सीमित हैं, तथापि भारतीय धर्म के अन्तर्गत दर्शन, नैतिक आचरण एवं कर्मकाण्ड दोनों का समावेश है।" इसी प्रकार श्री प्रकाश गुप्त ने कबीर के सुधारक रूप को रेखांकित करते हुए यह उद्गार व्यक्त किये हैं कि, "यद्यपि सुधार करना या नेतागिरी की प्रवृत्ति फक्कड़ मस्तमौला सन्त कबीर में नहीं थी, किन्तु वे समाज के कूड़ा-कर्कट या कुरूप को निकाल फेंकना चाहते थे। अपनी इसी प्रवृत्ति के कारण वे स्वतः सुधारक बनना चाहते हुए भी राम-दिवाने थे। कबीर को सुधारक का पद प्राप्त हो ही जाता है। वास्तव में तो वे मानव के दुःख से उत्पीड़ित हो उसकी सहायता के लिए चले। जनता के दुःख-दर्द और उसकी वेदना सरस्वती बही थी।"

सुधारक कबीर के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों का विवेचन इस प्रकार से प्रस्तुत है-

1. सामाजिक सुधार–कबीर ने जहाँ धार्मिक और दार्शनिक क्षेत्र में सुधार लाने प्रयास किया है, वहीं उन्होंने समकालीन जीवन में परिव्याप्त, जातिगत, ऊँच-नीच और भेद भाव की भावना, छुआछूत की भावना, दुराचार की समस्या, मद्यपान और मांस-भक्षण की कुप्रवृत्तियों आदि पर भी तीव्र प्रहार किये हैं। समाज-सुधार की दृष्टि से कबीर की उक्तियाँ इतनी अधिक मार्मिक हैं कि वे कबीरकालीन समाज पर ही नहीं, अपितु आधुनिककालीन सामाजिक कुरीतियों पर भी पूर्णतः चरितार्थ होती हैं का

(क) आचरण की सात्विकता- समाज सुधारक की दृष्टि से कबीर का एक महान कार्य सात्विक आचरण पर बल देना माना जा सकता है। साधना में नारियों को बाधक मानते हुए उन्होंने लिखा था-

'एक कनक अरु कामिनी दुर्गम घाटी दोय।
चलौ-चलौ सब कोई कहै पहुँचे बिरला कोय ॥'

किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं है कि वे नारी जाति के ही विरोधी थे। उनका विरोध भोग-विलासमयी नारियों से ही रहा है, क्योंकि पवित्र आचरण वाली सात्विक नारियों की उन्होंने प्रशंसा भी की है

'पतिव्रता मैली भली काली कुचित कुबेस ।'

(ख) छुआछूत का विरोध- छुआछूत की समस्या पर यद्यपि तीव्र कुठाराघात आधुनिक काल में गांधी जी द्वारा किया गया, किन्तु इस दिशा में कबीर भी पीछे नहीं रहे, उन्होंने ब्राह्मण वर्ण द्वारा छुआछूत का प्रपंच खड़ा करने की भर्त्सना करते हुए कहा था-

'काहे को कीजै पांडे छोति विचार छोतहिं से अपना संसार
हमरे कैसे लोहू तुम्मरे कैसे दूध तुम कैसे वांभन पांडे हम कैसे सूद
छोति-छोति करत तुम्ह हो जाए तो गुव्वास काए को आए।'

(ग) जातिगत ऊँच- नीच का विरोध-छुआछूत का विरोध करने के साथ-साथ कबीर ने जातिगत ऊँच-नीच की भावना पर भी तीव्र प्रहार किया है। एक ओर तो उन्होंने अपनी इस प्रकार की उक्तियों से मानव मात्र की समानता का प्रचार किया कि-

‘साई के सब जीव हैं, कीरी कुंजर दोय ।’
‘जाति-पाँति पूछै नहिं कोइ, हरि को भजै सो हरि को होइ ।’

तो दूसरी ओर उन्होंने कटुतापूर्वक ब्राहमणों के ब्राहमणत्व को चुनौती देते हुए यहाँ तक फटकारा कि यदि तुम वास्तव में ब्राहमण होने के कारण हम नीची जातियों से श्रेष्ठ और महान हो तो फिर तुम्हारा जन्म-मार्ग भी हमारे समान क्यों है? क्यों नहीं तुम दूसरे मार्ग से उत्पन्न हुए हो?

“जो तू बांभन बांभनी जाया।
और राह है क्यों नहीं आया ॥ “

(घ) मांस-भक्षण और हिंसा का विरोध- मुसलमानों के साहचर्य के कारण हिन्दुओं में भी मांस-भक्षण की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही थी, जिसकी कबीर ने तीव्र भर्त्सना की है। उन्होंने इस सन्दर्भ में बड़ा ही सजीव यह दृष्टान्त दिया है-

‘बकरी पाती खात है, ताकी काढ़ी खाल
जो नर बकरी ख़ात है, जिनको कौन हवाल॥’

इसी प्रकार उन्होंने मुसलमानों को फटकारते हुए कहा है-

‘दिन को रोजा रखत हैं, राति हनत हैं गाय ।
यह तो खून वह बन्दगी, कैसे खुसी खुदाय।’

(ङ) हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य पर बल- समाज-सुधारक के रूप में कबीर का योगदान इस दृष्टि से भी बड़ा महत्त्वपूर्ण रहा है कि उन्होंने अपने समकालीन सामाजिक जीवन में व्याप्त हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य की खाई पाटने का प्रयास किया है। उन्होंने दोनों ही धर्मावलम्बियों की साम्प्रदायिक कट्टरता का विरोध और उपहास करते हुए कहा था-

‘अरे इन दोऊ राह न पाई।
हिन्दुन की हिन्दुआई देखी, तुरकन की तुरकाई ।’

(च) कथनी और करनी का विरोध- कबीरदास ने कथनी और करनी में भेद रखने वाले व्यक्तियों का विरोध किया है। उनका यही विचार था कि जो कुछ कहा जाए, उसे पूरा किया जाये अन्यथा

केवल कहने से कोई कार्य पूरा नहीं हो जाता है। उन्होंने कथनी करनी के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए कहा-

कथनी मीठी खाँड-सी, करनी जो विस होय।,
कथनी तजि करनी करै, विष से अमृत होय ॥

(छ) हिंसा का विरोध- कबीरदास ने अपने युग की हिंसा का घोर विरोध किया है। हिंसा करने वाले हिन्दू-मुसलमानों की निन्दा करते हुए कबीरदास ने कहा कि-

वै हलाल, वै झटका मारै, आगि दोऊ घर लागि ।

तथा–

बकरी पत्ता खात है, ताकी काढ़ी खाल।
जो नर बकरी खात है ताको कौन हवाल॥

(ज) सन्त-असंत का भेद- कबीरदास ने सन्त-असंत, सज्जन और दुर्जन के भेद को बहुत ही अच्छी तरह से समझा है। दोनों के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए इन्होंने कहा कि सन्त अनेक दुर्जनों के आ जाने पर अपनी सज्जनता का परित्याग नहीं करते हैं, सन्तों की सच्चाई दूसरों की पीड़ा और कुप्रभाव को समाप्त करने में सक्षम होती है–

सन्त न छोड़े संतई कोटिक मिलै असंत।
मलय भुजंगहि बेधिया सीतलता न तजंत॥
कबीर सोई पीर है, जो जानै पर पीर।
जो पर पीर न जानहिं, जो काफिर वे पीर॥

2. धार्मिक (दार्शनिक) सुधार- कबीरदास ने अपने युग की धार्मिक (दार्शनिक) विभिन्नताओं को समन्वय का रूप देने का पुरजोर प्रयास किया। कबीरदास ने वैष्णव, शाक्त, बौद्ध, सिंद्ध, नाथों आदि हिन्दू उपासकों तथा इस्लाम धर्म के कट्टर एकेश्वरवाद और निराकारोपासना को गम्भीरतापूर्वक समझा। इनके परस्पर विभिन्न मतों को समन्वय का उन्होंने ऐसा मार्ग दिखाया, जो सामान्य जनता के लिए भी सम्भव हो सका। दशरथ पुत्र राम को ही सर्वव्यापक परमेश्वर मानने वाले हिन्दुओं को फटकारते हुए कबीरदास ने कहा-

"दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना।
राम नाम का मरम न जाना॥'

कबीरदास ने इस राम के स्थान पर एक ऐसे निराकार ईश्वर का ध्यान पूजा करने का उपदेश दिया, जिसमें रूप-स्वरूप कुछ भी नहीं है-

'जाके मुँह माथा नहीं, नहीं रूप-सरूप ।'

3. मूर्ति पूजा आदि बाह्याडम्बरों का विरोध– कबीरदास ने किसी प्रकार की मूर्ति-पूजा, सिर मुड़ाने, तिलक छाप लगाने, माला जाप करने आदि की कटु आलोचना करते हुए बहुत बड़ा विरोध प्रकट किया। माला जपने वालों का विरोध करते हुए उन्होंने कहा-

माला फेरत जुग भया, गया न मनका फेर।
करका मनका डारि दे, मनका मनका फेर॥
माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माँहि।
मनुआ तो चहुँ दिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं॥

इसकी अपेक्षा कबीर ने चक्की की पूजा को उत्तम बताते हुए कहा है-

'पाहन पूजै हरि मिलें तो मैं पूजूँ पहार।
या ते तो चाकी भली, पीस खाए संसार॥'

इसी प्रकार सिर मुंडाने का विरोध करते हुए उनके उद्गार हैं कि-

मूँड मुड़ाये हरि मिलें सब कोइ लेह मुड़ाया।
बार-बार के मूड़ते भेड़ न बैकुण्ठ जाय ॥

मस्तक पर धार्मिक चिन्ह के रूप में तिलक छाप लगाने की प्रथा का विरोध करते हुए कबीर कहते हैं-

'बैस्नों भया तो क्या भया बूझा नहीं विवेक,
छापा तिलक लगाय कर, दाधा लोक अनेक।'

4. बाँग लागने आदि आडम्बरों का विरोध- हिन्दुओं के बाह्याडम्बरों का विरोध करने के साथ-साथ कबीर ने इस्लाम धर्म के बाह्याडम्बरों का विरोध करके भी अपनी निर्भीकता का परिचय दिया है। उदाहरणार्थ उनकी यह व्यंग्योक्ति देखिए-

'कांकर पाथर जोरि के मस्जिद लई चिनाय ।
ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे, क्या बहरा हुआ खुदाय ॥'

इसी प्रकार उन्होंने दिन में रोजा रखने और रात्रि में गाय का वध करने की प्रथा की निन्दा करते हुए मुसलमानों को फटकारा है-

"दिन को रोजा रखत हैं, राति हनत हैं गाय।
यह तो खून वह बंदगी, कैसे खुसी खुदाय॥'

उन्होंने मुसलमानों द्वारा सुन्नत या खतना कराने की धार्मिक प्रक्रिया का भी विरोध किया है-

'जो तू तुरुक तरुकिनी जाया।,
भीतर खतना क्यों न कराया। '

हिन्दुओं में कबीर के आक्रोश के पात्र पंडित रहे हैं, तो मुसलमानों में उन्होंने मौलवियों को आड़े हाथों लिया है, जैसे-

कुकड़ी मारै बकरी मारै हक्क-हक्क करि बोलै,
सबै जीव सांई के प्यारे, उबरहुगे किस बोलै ।

5. प्रेम और ज्ञान में समन्वय- कबीरदास ने अपने युग के अमानवीय तत्त्वों का विरोध करते हुए परस्पर मेल-मिलाप और प्रेम का जीवन बिताने का उपदेश दिया। वे ज्ञान को प्रेम से ही सम्भव मानते हुए कहते हैं-

पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पण्डित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पण्डित होय ॥

6. भाषा के क्षेत्र में समन्वय - कबीरदास ने अपने युग की भाषा की गड़बड़ी को दूर करने का बार-बार प्रयास किया है– इसीलिए उन्होंने अपनी भाषा में विभिन्न भाषाओं और बोलियों को स्थान दिया है। उन्होंने भाषा को जनभाषा के रूप में ही अपनाया है। इसीलिए उनकी भाषा को सधुक्कड़ी या पंचमेल खिचड़ी भाषा कहा जाता है।.

7. समन्वयवादी दृष्टिकोण- कबीरदास के व्यक्तित्व का एक महान पक्ष समन्वयवादी पक्ष है। कबीरदास समग्र रूप से समाज, धर्म, दर्शन, राजनीति आदि के क्षेत्र में समन्वय चाहते थे। वे कहीं

किसी प्रकार का असन्तुलन नहीं चाहते थे। इस सम्बन्ध में उनके व्यक्तित्व का मूल्यांकन करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है– “कबीर ऐसे ही मिलन बिन्दु पर खड़े थे जहाँ से एक ओर हिन्दुत्व निकल जाता है और दूसरी ओर मुसलमानत्व, जहाँ एक ओर से ज्ञान निकल जाता था और दूसरी ओर शिक्षा, जहाँ एक ओर भक्तिमार्ग निकल जाता था और दूसरी ओर योगमार्ग, जहाँ एक ओर निर्गुण भावना निकल जाती थी और दूसरी ओर सगुण भावना, उसी चौराहे पर खड़े थे। वे दोनों ओर देख सकते थे और परस्पर विरुद्ध दिशा में गये हुए मार्गों के दोष-गुण उन्हें स्पष्ट दिखाई दे जाते थे।”

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि कबीर अपने युग की परिस्थितियों से विशेष रूप से प्रभावित थे। इन परिस्थितियों से बाध्य होकर उन्होंने एक सुधारक कवि के रूप में अमूल्य योगदान दिया है।